ओ३म्

मातृ-गौरव

माता निर्माता भवति

लेखक :

आचार्य ब्र० नन्दकिशोर

वेद मन्दिर, ज्वालापुर (हरिद्वार)

प्रकाशक :

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य

धर्मार्थ ट्रस्ट

हिण्डौन सिटी (राज०)

© प्रकाशकाधीन

प्रकाशक	:	**श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट** ब्यानिया पाड़ा, हिण्डौन सिटी (राज०)-३२२ २३० दूरभाष : ०७४६९-३४६२४, ३२६२४
संस्करण	:	अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस २३ दिसम्बर, २००१
प्रकाशित प्रतियाँ	:	१३०००
मूल्य	:	१०.०० रुपये
शब्द संयोजक	:	**भगवती लेज़र प्रिंट्स** नई दिल्ली-६५, दूरभाष : ६४१४३५९
मुद्रक	:	**राधा प्रेस** कैलाश नगर, दिल्ली-११० ०३१

समर्पण

देश व विदेश की स्त्री आर्य-समाज, कन्या गुरुकुल, वनिता आश्रम इत्यादि संस्थाओं के निर्माण में जिन्होने अपना सर्वस्व होम दिया, उन माताओं के चरण-कमलों में सादर समर्पित ।

—ब्र० नन्दकिशोर

प्रकाशकीय

इस लोक में प्रत्येक जीवधारी के लिए माता का स्थान सर्वोपरि है। मनुष्य के लिए तो इसलिए भी कि उसका माता के साथ सम्बन्ध अन्त तक रहता है। यह सामाजिकता के लिए ही नहीं, अपितु स्वहित के लिए भी आवश्यक है कि हम अपनी माता और पिता की यथाशक्ति सन्तुष्टि और सेवा करने का यत्न करते रहें।

हमारा प्राचीन इतिहास साक्षी है कि माताओं ने समाज और राष्ट्रहित के लिए अपने पुत्रों का निर्माण किया। यही नहीं उनके बलिदान पर माताओं को आत्मक्लेश नहीं, अपितु स्वकर्तव्यपूर्ति का सन्तोष भी अनुभव हुआ। परिवार और विशेषरूप से सन्तान के लिए माताएँ क्या कुछ नहीं करती हैं। फिर ऐसी माता के हितार्थ कुछ नहीं कर सकनेवाले मनुष्य से अधिक अभागा और कौन होगा?

जहाँ कहीं कुसंस्कार और भोगवाद की अति में बहकर माताओं ने निज कर्तव्यों का पालन नहीं किया, वहीं परिवार, समाज और राष्ट्र का जीवन उलट-पुलट हो गया। प्रस्तुत लघु पुस्तिका में लेखक ने जहाँ सन्तानों को कर्तव्य बोध कराया है, वहीं माताओं को सन्तान-निर्माण की दिशा भी दर्शायी है। यह वास्तविकता स्वीकार करनी ही होगी कि इच्छानुरूप सन्तान का निर्माण सम्भव है, परन्तु इसके लिए अपेक्षित वातावरण बनाना होगा जो एक लम्बी प्रक्रिया है, जिसके लिए तप और त्याग आवश्यक है।

सन्तान-निर्माण के लिए जहाँ ताड़ना करने का विधान है, उसे प्रसङ्गानुसार समझना होगा कि वात्सल्य के आवेग में जो हमेशा सन्तान का लाड़ ही करते रहते हैं वे सन्तान को हठी, दुराग्रही बना उसका अपकार ही करते हैं। जहाँ आवश्यक हो वहाँ उसकी ताड़ना अवश्य करें, परन्तु अन्तर में स्नेह रखते हुए बालक की हितकामना सहित ही ताड़ना करें।

प्रस्तुत लघु कलेवर में ब्रह्म० नन्दकिशोरजी ने बहुत कुछ लिख दिया है, जिस पर विचारपूर्वक आचरण करने से सबका भला होगा।

हम लेखक के साथ-साथ पूज्य स्वामी जगदीश्वरानन्दजी सरस्वती के भी हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने मनोयोगपूर्वक प्रूफ पढ़कर इसके कलात्मक सुन्दर और शुद्ध प्रकाशन में अमूल्य सहयोग प्रदान किया है।

इस पुस्तक की ग्यारह हजार प्रतियाँ मुनिवर गुरुदत्त संस्थान, हिण्डौन सिटी द्वारा प्रकाशित हुई थीं। अब इसे श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ ट्रस्ट, हिण्डौन सिटी द्वारा प्रकाशित किया जा रहा है। हम आशा करते हैं कि अतिवादी आधुनिकता के प्रवाह में बह रहे जनों के लिए यह पुस्तक उत्तम मार्गदर्शक का कार्य करेगी। **—प्रभाकरदेव आर्य**

माता

माता शब्द की धातु और निरुक्ति द्वारा व्याख्या

माता—'मान पूजायाम्' धातु से 'माता' शब्द निष्पन्न होता है। **'मान्यते पूज्यते या सा माता'** अर्थात् जिसका मान व पूजा की जाती है, वह माता कहलाती है। 'माङ् माने शब्दे च' धातु से भी 'माता' शब्द सिद्ध होता है। **'या मिमीते मानयति वा सर्वान् पुत्रान् सा माता'** अर्थात् पूर्ण कृपायुक्त जननी अपने सन्तानों का सुख और उन्नति चाहती है, इसलिए उसे माता कहते हैं।

माता निर्माता भवति

माता निर्माता होती है, जो बच्चों का लालन-पालन और निर्माण करे, वह माता कहलाती है। माता का हाथ विश्वकर्मा का हाथ होता है, माता जैसा चाहे वैसा ही बच्चों का निर्माण कर सकती है।

माता की महिमा व गरिमा

वैदिक शास्त्रों, मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण, महाभारत इत्यादि ग्रन्थों में माता की महिमा व गरिमा पर विशेषरूप से प्रकाश डाला गया है, अर्थात् माता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की गई है। जैसे महर्षि मनु ने कहा है---

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते ॥

—मनु० २।१४५

दस उपाध्यायों से एक आचार्य, सौ आचार्यों की अपेक्षा एक पिता और हज़ार पिताओं की अपेक्षा एक माता गौरव में अधिक है, अर्थात् बड़ी है।

किंवदन्ती है कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी ने रावण का संहार कर स्वर्ण की लंका को जीत लिया तो लक्ष्मण ने लंका की सुन्दरता तथा विशाल वैभव को देखकर श्री रामचन्द्रजी से प्रार्थना की कि भाई ! लंका में ही निवास करना चाहिए, अब अयोध्या जाने से

क्या लाभ है ? तब श्री रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण को बड़े प्यार से उत्तर दिया—

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते ।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ॥

हे लक्ष्मण ! मुझे सोने की लंका बिल्कुल पसन्द नहीं है, मेरे लिए तो जन्मदात्री जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है । अहा ! श्रीराम को जननी और जन्मभूमि पर कैसी अगाध श्रद्धा थी !

नेपाल के राजा ने भी बड़े गर्व से कागज़ के एक रुपया से लेकर सौ रुपये तक के नोट पर किसी कवि का यह अमर वाक्य **'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'** छपवाया है । नेपाली जनता पर "आर्य संस्कृति" की विशेष छाप है ।

महाभारत के वनपर्व में यक्ष-युधिष्ठिर संवाद में माता के महत्त्व व गरिमा का परिचय मिलता है—

यक्ष उवाच

का स्विद् गुरुतरा भूमेः किं स्विदुच्चतरं च खात् ।
किं स्विच्छीघ्रतरं वायोः किं स्विद् बहुतरं तृणात् ॥

भावार्थ—यक्ष ने पूछा—पृथिवी से भारी क्या है ? आकाश से भी ऊँचा क्या है ? वायु से भी तीव्र चलनेवाला क्या है ? और तृणों से भी असंख्य (असीम—विस्तृत) एवं अनन्त क्या है ?

युधिष्ठिर उवाच

माता गुरुतरा भूमेः पिता चोच्चतरं च खात् ।
मनः शीघ्रतरं वाताच्चिन्ता बहुतरी तृणात् ॥

भावार्थ—युधिष्ठिर ने कहा—माता पृथिवी से भारी है । पिता आकाश से भी ऊँचा है । मन वायु से भी अधिक तीव्रगामी है और चिन्ता तिनकों से भी अधिक असंख्य (असीम—विस्तृत) एवं अनन्त है ।

महाभारत में माता के विषय में पुनः कहा गया है—

नास्ति मातृसमो गुरुः । —महा० अनु० १०५।१५

माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है।

मनुस्मृति में पुनः माता को पृथिवी की मूर्ति बताया है—

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः॥

—मनु० २।२२६

अर्थ—आचार्य वेदज्ञान देने से ब्रह्मा की मूर्तिरूप हैं, पिता पालन करने से प्रजापति की मूर्तिरूप हैं। माता पालन व सहनशीलता के कारण पृथिवी की मूर्ति है, अपना बड़ा भाई सहायक होने से अपनी आत्मा की ही मूर्ति है।

माता का सन्तान के प्रति कर्तव्य और उपदेश

महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय समुल्लास में लिखते हैं कि—

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।

यह शतपथब्राह्मण का वचन है—वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता दूसरा पिता और तीसरा आचार्य हो तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है, वह कुल धन्य! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान्! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है, उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता। इसलिए (मातृमान्) अर्थात् **प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्**, धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे।

पाँच वर्ष तक माता द्वारा शिक्षा

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अङ्ग से कुचेष्टा न कर सकें। जब बोलने लगे तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट-उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्ण का स्थान, प्रयत्न अर्थात् जैसे

'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न—दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर स्वर, अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवें।

जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी, और बड़े-छोटे, मान्य, पिता-माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्तमान और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करे। जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न हो। सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करे, वैसा प्रयत्न करती रहे।

व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या-द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती है और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है, इससे उसका स्पर्श न करें। सदा सत्यभाषण, शौर्य-धैर्य, प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो कराए।

सन्तानों के लाड़न में हानि, ताड़न में लाभ

उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं। इसमें व्याकरण 'महाभाष्य' का प्रमाण है—

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥

अर्थ—जो माता-पिता और आचार्य सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं, वे जानो अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो सन्तानों वा शिष्यों का लाड़न करते हैं, वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिलाके नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़ना से गुणयुक्त होते हैं तथा सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़ना से प्रसन्न और लाड़न से अप्रसन्न सदा रहा करें, परन्तु माता-पिता तथा अध्यापक ईर्ष्या-द्वेष से

ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भय प्रदान और भीतर से कृपादृष्टि रक्खें।

चाणक्यनीति के द्वितीय अध्याय के १२वें श्लोक द्वारा महाभाष्य का समर्थन किया गया है—

लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद् बहवो गुणाः ।
तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत् ॥

अर्थ—लाड़-प्यार से बच्चों में बहुत-से दोष आ जाते हैं और दण्ड देने से अनेक गुण उत्पन्न होते हैं, अतः पुत्र-पुत्रियों, शिष्य-शिष्याओं का ताड़न करना चाहिए, लाड़न नहीं करना चाहिए ।

वाल्मीकि रामायण में सुमित्रा ने स्वपुत्र लक्ष्मण को आदर्श व्यवहार-कुशलता का उपदेश देकर भारतीय संस्कृति की नींव को दृढ़ कर दिया है ।

राम वन-गमन के समय उन्होंने लक्ष्मण से कहा—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम् ।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम् ॥

—वा० रा० अयो० ३३।८

हे वत्स ! (यदि वन में माता-पिता और अयोध्या का स्मरण आये तो) श्रीराम को तुम अपना पिता दशरथ समझना और सीता को मेरे समान अपनी माता समझना तथा वन को ही अयोध्या समझना । तुम सुखपूर्वक प्रस्थान करो ।

अहा ! वाल्मीकि रामायण में व्यवहार-कुशलता का कितना सुदर उपदेश किया गया है । बड़े भाई को पिता और भाभी को माता समझना चाहिए । आजकल इसका स्थान अश्लीलता और विकृति ने ले लिया है ।

वाल्मीकि रामायण के इस श्लोक का अर्थ गोस्वामी तुलसीदास के मुख से इस चौपाई में मुखरित होता है ।

तात तुम्हारी मातु वैदेही । पिता रामु सब भाँति स्नेही ॥

वैदिक आदर्श माता के उद्गार

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥

—ऋ० १०।१५९।३

अर्थ—मेरे पुत्र शत्रु के छक्के छुड़ानेवाले हैं, मेरी पुत्री विराट् अद्वितीय तेजस्विनी है और मैं भी विजयिनी हूँ। मेरे पति में उत्तम कीर्ति का निवास है।

वैदिक नारी अबला न होकर वीर-प्रसवा है और स्वयं ओजस्विनी है। वह कह रही है कोई मेरी ओर आँख उठाकर तो देखे, वह ऐसा परास्त होकर लौटेगा कि सदा याद रक्खेगा।

हमारे पुत्र ऐसे अस्त्रधारी हों, जो आचार्य द्रोण के शब्दों में घोषणापूर्वक कह सकें—

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः ।
इदं ब्राह्ममिदं क्षात्रं शापादपि शरादपि ॥

अर्थ—मेरे आगे चारों वेद हैं, पीछे धनुष और बाण हैं। आगे ब्रह्मशक्ति है और पीछे क्षात्रशक्ति। मैं शाप और शर दोनों से शत्रुओं का मान-मर्दन कर सकता हूँ।

पञ्चतन्त्र में लिखा है—

किं तेन जातु जातेन मातुर्यौवनहारिणा ।
आरोहति न यः स्वस्य वंशस्याग्रे ध्वजो यथा ॥

—पञ्चतन्त्र १।२७

अर्थ—माता के यौवन का अपहरण करनेवाले उस पुत्र के जन्म से क्या लाभ जो अपने वंश में ध्वजा के अग्रभाग की भाँति नहीं लहराता।

किसी कवि ने कहा है—

जननी जने तो भक्त जने या दाता या शूर ।
ना तो जननी बाँझ रहे काहे गवावे नूर ॥

अर्थ—माता सच्चे अर्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व धार्मिक पुत्रों को जन्म देवे नहीं तो बाँझ रहे, व्यर्थ में जीवन को बरबाद न करे, वह वीर पुत्रों को जन्म दे, जिससे राष्ट्र का कल्याण हो ।

सन्तति निर्माण, माता के संस्कार

माताएँ क्या नहीं कर सकतीं । माता निर्माता होती है, वह संसार की काया पलट सकती है, अर्थात् माता वह साँचा है जो पुत्र को अपने में ढालता है । माता चाहे तो वीर पुत्रों को उत्पन्न कर सकती है । किसी ने कहा भी है—

माता के बनाये पुत्र कायर और कपूत होत ।
माता के बनाये पुत्र वीर बन जात हैं ॥

अर्थ—जिस समय सन्तान माता के पेट में होती है, उस समय माता के मस्तिष्क में जैसे विचार होते हैं, सन्तान भी वैसी ही बन जाती है । इसमें प्राचीनकाल के इतिहास के प्रमाण मिलते हैं, जैसे—

(१) महाभारत के अध्ययन करनेवाले जानते हैं कि जब अभिमन्यु सुभद्रा के पेट में था, तब अर्जुन ने उसे चक्रव्यूह के भेदन की कथा कही थी । इसी का प्रभाव था कि अभिमन्यु चक्रव्यूह को तोड़ता हुआ भीतर घुस गया था । इस शूरवीर ने अनेक योद्धाओं को मृत्यु की गोद में सुला दिया । कहते हैं अर्जुन ने सुभद्रा को कथा सुनाते हुए उस व्यूह में से निकल आने का हिस्सा नहीं कहा था, इसलिए वह व्यूह में से बाहर नहीं आ सका । अन्त में सात महारथियों ने मिलकर उसका वध किया । जिन लोगों ने यह बात लिखी, उनके सम्मुख गर्भस्थ सन्तान पर माता के संस्कारों का चित्रित हो जाना—यह विचार प्रबल था ।

(२) कहा जाता है कि अष्टावक्र ने बहुत कम उम्र में अर्थात् आठ वर्ष की आयु में वेद-वेदान्त सीख लिया था, इसका कारण यह है कि जब वह पेट में था, उस समय उसकी माता प्रतिदिन वेद का स्वाध्याय किया करती थी ।

(३) राजा दुष्यन्त के पुत्र भरत का निर्माण भी उनकी माता के गर्भ में ही हुआ था। जिस समय भरत छह वर्ष के बालक थे, उस समय वे सिंह-शावकों से खेला करते थे। उन्हें ललकारते हुए वे कहा करते थे---

जृम्भस्व रे सिंहशावक ! जृम्भस्व, दन्तान् ते गणयिष्यामि।

—अभिज्ञानशाकुन्तलम् सप्तमो अङ्कः

हे सिंह के बच्चे ! अपना मुँह खोल, मैं तेरे दाँतों को गिनूँगा।

(४) वीर क्षत्राणी माताएँ अपने पुत्रों का निर्माण कैसे करती थीं ? सुनिए—आकाश में घनघोर घटा छाई हुई है, बादल कड़क रहे हैं, बिजली चमक रही है। इन भयंकर गर्जना करते हुए बादलों से बच्चा चौंक न जाए, अतः माता बादलों को सम्बोधित करते हुए कहती है—"ओ बादल, मत गर्ज !" बादल पूछता है—"क्यों ?" माता उत्तर देती है—"मेरे गर्भ में बच्चा है। तेरी गड़गड़ाहट को सुनकर यह बच्चा समझता है कि शेर दहाड़ रहा है, अतः उससे लड़ने के लिए यह उछलता है और मुझे कष्ट होता है।"

(५) प्राचीन इतिहास में सबसे सुन्दर उदाहरण माता मदालसा देवी का है। मदालसा के तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम रखे गये—विक्रान्त, सुबाहु और अरिदमन। माता उन्हें लोरी देते हुए कहती—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि
संसारमाया परिवर्जितोऽसि।
संसारमायां त्यज मोहनिद्रां
मदालसा शिक्षयतीह बालम् ॥

अर्थ—हे मेरे बेटे ! तू शुद्ध है, बुद्ध है, **निरञ्जन**=निर्दोष है, संसार की माया से रहित है। इस संसार की माया को त्याग दे। उठ, खड़ा हो, मोह को परे हटा। इस प्रकार मदालसा अपने पुत्र को शिक्षा देती है।

इस शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि तीनों पुत्र राज-पाट का मोह त्यागकर वनों को चले गये। यह स्थिति देख महाराज ने कहा—इस प्रकार वंश कैसे चलेगा ? क्या सबको योगी बना दोगी ? तब चौथे पुत्र के उत्पन्न होने के समय उसने अपनी मानसिक स्थिति को बदल दिया, फलतः चौथा पुत्र सर्वगुणसम्पन्न क्षत्रिय हुआ। मदालसा ने उसका नाम 'अलर्क' रक्खा। माता ने उसे राजनीति का उपदेश दिया। उसे लोरी देते हुए माता कहती थी—

धन्योऽसि रे यो वसुधामशत्रु-
रेकश्चिरं पालयिताऽसि पुत्र ।
तत्पालनादस्तु सुखोपभोगो
धर्मात् फलं प्राप्स्यसि चामरत्वम् ॥

—मार्कण्डेय पुराण २६।२५

अर्थ—हे पुत्र ! तू धन्य है जो अकेला ही शत्रुओं से रहित होकर इस पृथिवी का पालन कर रहा है। धर्मपूर्वक प्रजापालन से तुझे इस लोक में सुख और मरने पर मोक्ष की प्राप्ति होगी।

राज्य की उत्तम व्यवस्था का उपदेश देते हुए वह कहती—

राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथाः
साधून् रक्षंस्तात ! यज्ञैर्यजेथाः ।
दुष्टान्निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये
गोविप्रार्थे वत्स ! मृत्युं व्रजेथाः ॥

—मा० पु० २६।४१

अर्थ—हे पुत्र ! तू राज्य करते हुए अपने मित्रों को आनन्दित करना, साधुओं=श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा करते हुए खूब यज्ञ करना। गौ और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए संग्राम-भूमि में शत्रुओं को मौत के घाट उतारता हुआ तू स्वयं मृत्यु को भी प्राप्त हो जाना।

इस प्रकार माताएँ अपने बच्चों को संस्कारित करती हैं।

(६) पाश्चात्य देशों में भी इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कहते हैं कि अमेरिका के प्रेसीडेण्ट गारफील्ड का हत्यारा गीटू जब माता के गर्भ में था, तब माता ने गर्भपात कर उसकी हत्या

कर डालने का प्रयत्न किया था। वह गर्भपात नहीं कर सकी, परन्तु माता के गर्भ में स्थित उस सन्तान पर जो संस्कार पड़ चुके थे, उन्होंने गीटू को हत्यारा बना दिया।

(७) नेपोलियन के विषय में भी कहा जाता है कि जब वह माता के पेट में था तब उसकी माता सेनाओं की परेड देखने में लगी रहती थी। जब वह सैनिकों को परेड करते और सैनिक गीत गाते सुनती थी, तब उसका रोम-रोम प्रफुल्लित हो उठता था। गर्भावस्था में पड़े इन संस्कारों ने नेपोलियन को एक महान् योद्धा बना दिया।

(८) प्रिंस बिस्मार्क जब माँ के गर्भ में था तब उसकी माँ अपने घर के उन भागों को बड़े मानसिक कष्ट से देखा करती थी, जिन्हें नेपोलियन की फ्रेंच सेनाओं ने अपने उन्माद में नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। इन तीव्र संस्कारों का परिणाम यह हुआ कि बिस्मार्क के हृदय में फ्राँस से बदला लेने की तड़प जाग उठी।

गर्भाधान को एक धार्मिक संस्कार का रूप देकर वैदिक संस्कृति ने मानव के नव-निर्माण की दिशा में एक चमत्कारिक विचार को जन्म दिया था। आज जो हम समाजसुधार के नारे लगा रहे हैं, उन्हें क्रियात्मक रूप देने का उपाय इस संस्कार के महत्त्व को समझना है।

बालक के निर्माण में माता-पिता दोनों का ही महत्त्व है। इस विषय पर श्रीराम एवं लक्ष्मण का संवाद उत्तम प्रकाश डालता है। ऐसी किंवदन्ती है कि जिस समय श्रीराम और लक्ष्मण वन में थे, तब लक्ष्मणजी के ब्रह्मचर्य की परीक्षा के लिए श्रीराम ने प्रश्न किया—

पुष्पं दृष्ट्वा फलं दृष्ट्वा दृष्ट्वा च नवयौवनाम्।
एकान्ते काञ्चनं दृष्ट्वा कस्य नो विचलेन्मनः॥

अर्थ—सुन्दर सुगन्धित पुष्पों को, स्वादिष्ट फलों को और नवयौवना को देखकर तथा एकान्त में पड़े हुए कांचन (सुवर्ण) को देखकर किसका मन विचलित नहीं होता? यतिवर लक्ष्मण उत्तर देते हैं—

माता यस्य पतिव्रता पिता च यस्य धार्मिकः।
एकान्ते काञ्चनं दृष्ट्वा तस्य नो विचलेन्मनः॥

अर्थ—जिसकी माता पतिव्रता (उच्च चरित्रवाली) और पिता धार्मिक (सदाचारी) है उसका मन एकान्त में पड़े हुए सुवर्ण (सोने) को देखकर भी विचलित नहीं होता। सदाचारी तथा धार्मिक माता-पिता बालकों को पवित्र शिक्षा देकर उनका चरित्र-निर्माण करते हैं।

बच्चों का माता के प्रति कर्तव्य

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥

—अथर्व० ३।३०।२

अर्थ—**पुत्रः**=पुत्र **पितुः**=पिता का **अनुव्रतः**=आज्ञाकारी हो, **मात्रा**=माता के **संमनाः**=मन को सन्तुष्ट करनेवाला **भवतु**=हो। **जाया**=पत्नी **पत्ये**=अपने पति के लिए सदा **मधुमतीम्**=माधुर्ययुक्त और **शन्तिवाम्**=शान्ति देनेवाली **वाचम्**=वाणी को **वदतु**=बोले।

मन्त्र में विशेषरूप से ध्यान देने योग्य बात है—

मात्रा भवतु संमनाः—पुत्र को चाहिए कि वह माता के मन को सन्तुष्ट करनेवाला हो।

मनुस्मृति में मनु महाराज ने लिखा है—

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥

—मनु० २।२२७

अर्थ—मनुष्य की उत्पत्ति के समय में जो क्लेश माता-पिता सहते हैं, उसका बदला उनकी सेवादि करके सौ वर्षों में भी नहीं चुकाया जा सकता।

आज के वैज्ञानिकों ने भूमि को तोल लिया है, परन्तु वे माता के हृदय को नहीं नाप पाये हैं। माता के हृदय में अपने पुत्र के लिए क्या भावनाएँ होती हैं, इस विषय में एक घटना प्रस्तुत है—

बीरबल ने मातृ-ऋण से अनृण होने के भाव से एक लाख रुपये एक थैली में भरकर माता के चरणों में डाल दिये और कहा—"माताजी ! जितना चाहो दान कर लो, जिससे मैं तुम्हारे ऋण से अनृण हो जाऊँ।"

जब बीरबल ने कई दिन इस प्रकार कहा तब एक दिन माता बोली—"पुत्र ! यदि तू मेरा ऋण ही चुकाना चाहता है तो रात्रि को मेरे पास सो जाना।" पुत्र ने माता के पास सोना स्वीकार कर लिया। रात्रि में बीरबल माताजी के पास सो गया। जब उसे निद्रा आने लगी तब माता ने कहा—"बेटा ! प्यास लगी है, पानी पिला दे।" बीरबल प्रसन्नता से उठा और पानी का गिलास भरकर माता को दे दिया। माता ने एक-दो घूँट पीकर शेष जल को बिस्तर पर उँडेल दिया। जब बीरबल ने देखा कि सारा बिस्तर गीला हो गया है तो बोला—"माँ ! यह क्या किया ?" माता ने कहा—"पुत्र ! ग़लती हो गई।" बीरबल चुप होकर सो गया। जब वह पुनः खर्राटे भरने लगा तब माँ ने उसे जगाकर कहा—"पुत्र ! प्यास लगी है, पानी पिला दे।" बीलबल ने कहा—"माँ ! अभी तो पानी पिया था, इतनी देर में फिर प्यास लग गई, क्या बिनौले खाये थे ?" ऐसा कहते हुए वह उठा और पानी का गिलास भरकर ला दिया। माता ने पहले ही की भाँति एक-दो घूँट पीकर शेष जल को पुनः बिस्तर पर डाल दिया। बीरबल ने झिड़ककर कहा—"माँ ! यह क्या करती है ? सारा बिस्तर गीला कर दिया।" माता बोली—"पुत्र ! अँधेरा था, गिलास हाथ से छूट गया।" बीरबल चुप होकर फिर लेट गया और थोड़ी ही देर में निद्रा में लीन हो गया। माँ ने पुनः जगाकर पानी माँगा। अबकी बार बीरबल का पारा पूरे १०४ डिग्री पर पहुँच गया। झुँझलाकर बोला—"माँ, सोने देती है या नहीं ? प्यास लगने की रट लगा रक्खी है।" यूँ कहता हुआ पानी लाया और बोला—"ले, अच्छी तरह मर ले।" माता ने पूर्ववत् थोड़ा-सा पानी होठों को लगाकर शेष जल से बिस्तर को तर कर दिया। अब बीरबल सहन नहीं कर सका। वह क्रुद्ध होकर बोला—"क्या यही दुःख देने के लिए अपने पास सुलाया था ? ऐसा प्रतीत होता है कि तेरी बुद्धि नष्ट हो गई है।" माता ने कहा—"बेटा ! बस, तूने मेरा ऋण चुका दिया। तू माँ का ऋण चुका सकता है ? तेरे सिर में जितने बाल हैं, इतने जन्मों तक भी तू निरन्तर सेवा करता रहे तो भी मातृ-ऋण से अनृण नहीं हो सकता। क्यों ? ले सुन, तुझे सुनाऊँ—तू गर्भ में था। प्रसव के दिन समीप आने लगे।

ज्योतिषियों से मैंने पूछा कि मेरे गर्भ में लड़का है या लड़की ? सबने एक स्वर में लड़का बताया। मैंने पूछा—यह लड़का क्या बनेगा ? इसपर एक ज्योतिषी ने कहा यदि तेरा प्रसव रात्रि के पहले प्रहर में हो गया तो तेरा लड़का शहर का चौकीदार बनेगा। यदि प्रसव दूसरे प्रहर में हुआ तो शहर का जेलदार और तीसरे प्रहर में हुआ तो मन्त्री बनेगा और राजा कहलायेगा। चौथे प्रहर में प्रसव होने पर लड़का महाराजा बनेगा।[१]

प्रसव का समय निकट आया तो मैं परमात्मा से प्रार्थना करने लगी कि भगवन् ! मेरा प्रसव पहले और दूसरे प्रहर में न हो। पहले प्रहर में तो नहीं हुआ, परन्तु दूसरे प्रहर के आरम्भ में ही मुझे प्रसव पीड़ा होने लगी, वेदना बढ़ती गई। ज्यों-त्यों करके दूसरा प्रहर समाप्त हुआ। अब वेदना असह्य हो गई, प्राण कण्ठ में आ गये, विवश होकर तीसरे प्रहर के आरम्भ में तुझे जन्म दिया, परिणामस्वरूप तू मन्त्री बना और राजा कहलाया। अब तू ही बता क्या तेरी इन कुछ ठीकरियों से मेरा ऋण उतर गया ?

जब तू बच्चा था तब तू बिस्तर पर टट्टी-पेशाब कर देता था, मैं तेरे गीले वस्त्र उतारकर तुझे अपने सूखे वस्त्रों से ढक देती। तेरे गीले वस्त्र को अपने नीचे करके तुझे सूखे वस्त्रों पर सुलाती थी। एक दिन नहीं, सप्ताह नहीं, मास नहीं निरन्तर कई वर्ष तक, जब तक तू अलग सोने और अपने-आप को सँभालने योग्य नहीं हुआ, मैं ऐसा करती रही। तू तो दो-तीन बार के बिस्तर गीला हो जाने से ही आवेश में आ गया और एक रात्रि में ही घबरा गया।

बीरबल लज्जित होकर माता के चरणों में गिर पड़ा और बोला—"माता ! तू धन्य है ? तेरा ऋण चुकाना असम्भव है।"

ऐसी ममतामयी माता के साथ प्रत्येक पुत्र को प्रीतियुक्त मनवाला होना चाहिए। कभी भूलकर भी उनसे कोई कटु एवं कठोर शब्द नहीं कहना चाहिए।

---

१. यह घटना माता के तप और साधना को दर्शाने के लिए दी गयी है। फलित ज्योतिष अवैदिक होने से माननीय नहीं है।

शुक्रनीतिसार में माता-पितादि के साथ विरोध करने का निषेध किया है—

मातृपितृगुरुस्वामिभ्रातृपुत्रसखिष्वपि ।
न विरुद्धयेन्नाकुर्यान्मनसाऽपि क्षणं क्वचित् ॥

—शुक्र० अ० ३ श्लोक ५०

अर्थ—माता-पिता, गुरु, स्वामी, भाई, पुत्र और मित्र इन सबका क्षणभर के लिए भी मन से भी कभी विरोध या अपकार नहीं करना चाहिए ।

वेद पढ़ चुकने के अनन्तर दिया गया दीक्षान्त-भाषण

वेदविद्या पढ़ा चुकने के अनन्तर आचार्य अन्तेवासी को—शिष्य को अनुशासन करता है और दीक्षान्त-भाषण देता हुआ कहता है कि—

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव ।
आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । —तैत्ति० १।११।२

अर्थ—माता को देव-तुल्य समझो । पिता को देव समझो । आचार्य को देव मानो । अतिथि को देव के तुल्य समझना चाहिए ।

आचार्य ने नव-स्नातक को 'माता को देव-तुल्य समझो' कहकर माता को सर्वप्रथम स्थान दिया है ।

इन चारों के विषय में आचार्य स्नातक को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि इनको देवता मानकर इनका सत्कार करना । माता ने तुम्हें नौ महीने पेट में रखकर पाला, पिता ने तुम्हारा पालन-पोषण किया । आचार्य ने विद्या देकर तुम्हें मनुष्य बनाया, अतिथि को तुम्हारे माता-पिता भी सिरमाथे पर रखते हैं—इसलिए इन सबको देवता समान मानना । तुम भी कभी पिता बनोगे, तुम्हारी सन्तान होगी, तुम्हारी पत्नी उसकी माता होगी, तुम भी कभी किसी के अतिथि होकर उसके घर जाओगे, अगर तुम इस समय इन सबको देवता समान मानोगे, तो तुम्हारी सन्तान भी तुम्हें देवता समान मानेगी । गृहस्थ-धर्म का यह

सिलसिला वैदिक संस्कृति का अभिन्न अंग है, इसे तुम जारी रखना जिससे यह क्रम सन्तान से अगली सन्तान तक चलता रहे।

चाणक्य-नीति में इन पाँच के साथ मातृवत् व्यवहार करने की शिक्षा दी गई है—

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च ।
पत्नी माता स्वमाता च पञ्चैता मातरः स्मृतः ॥

—चा० अ० ४ श्लोक २७

अर्थ—राजा की भार्या, गुरु की पत्नी, उसी प्रकार मित्र की पत्नी, पत्नी की माता (सास) और अपनी माता, पाँच माताएँ मानी गई हैं। इनके साथ मातृवत् व्यवहार करना चाहिए।

माँ की ममता

एक बालक के लिए दो माताएँ आपस में विवाद करने लगीं और जोर-शोर से यह हक जताने लगीं कि यह मेरा पुत्र है। यह विवाद राजा के कानों तक पहुँचा। राजा विवाद को सुलझा न सके। चिन्तामग्न रहने लगे। रानी ने राजा से चिन्ता का कारण पूछा तो राजा ने विवाद का सब समाचार रानी को सुना दिया। रानी ने राजा से कहा कि यह मामला स्त्रियों का है, इसलिए इसे मैं सुलझाऊँगी, आप चिन्तित न हों।

दूसरे दिन राजदरबार में रानी राजसिंहासन पर तनकर बैठी। बालक का न्याय करने के लिए एक जल्लाद को बुलाया और कहा कि लाओ तलवार, इस बालक को आधा-आधा टुकड़ा करके दोनों स्त्रियों को दे दो। जिस माँ का बच्चा था, वह चिल्ला पड़ी, यह बच्चा मुझे नहीं चाहिए। रानी ! इसे उसे ही दे दो। जिसका बच्चा नहीं था वह स्त्री बच्चे के टुकड़े होने में खूब खुश हो रही थी। रानी शीघ्र ही भाँप गई और तुरन्त फैसला दिया कि जो बच्चा माँ को प्राणों से भी प्यारा है, यह बच्चा उसी का है, यह उसे ही दिया जाए। धन्य है, माँ की ममता अमर रहे !

माँ की ममता और दिल की कहानी

दिल की बात आई तो एक फ्रेंच लेखक की छोटी-सी कथा भी स्मरण हो आई। एक प्रेमी युवक ने अपनी यौवन-वन-विहारिणी प्रेमिका से कहा—"प्रिये ! सारे संसार का ऐश्वर्य तुम्हारे चरणों पर न्यौछावर कर सकता हूँ। आसमान के तारे तोड़कर तुम्हारे केशपाश में गजरे की तरह गूँथ सकता हूँ। एकबार तुम केवल इशाराभर कर दो।" प्रेमिका ने कहा—"सच ?" प्रेमी ने कहा—"सच, सच, सच। आशिकों का कहना कभी झूठा नहीं होता।" प्रेमिका ने कहा—"तो फिर अपनी बुढ़िया माँ का दिल निकालकर मुझे ला दो। तब मैं तुम्हारी....."

प्रेम में दीवाना युवक सचमुच यह कुकृत्य करने पर आमादा हो गया। उसने छुरी से माँ का वक्ष चीरकर दिल निकाला और उसे बहुमूल्य तश्तरी में रेशमी रूमाल से ढककर अपनी प्रेमिका को भेंट करने चला। युवक को लगी ठोकर। वह गिर पड़ा। तश्तरी कहीं, रूमाल कहीं, माँ का दिल कहीं। अचानक युवक को माँ के उस क्षत-विक्षत धूलि-धूसरित दिल से एक हल्की-सी आवाज सुनाई दी—"बेटा ! तुझे कहीं चोट तो नहीं लगी ?"

उस युवक ने उठकर उस दिल को लेकर प्रेमिका को समर्पित किया। प्रेमिका ने कहा—"जो माँ का नहीं हुआ, वह मेरा क्या होगा।"

साभार—'फिर अन्दाज से बहार आई' पुस्तक से उद्धृत

श्रवणकुमार की पितृ-भक्ति

श्रवणकुमार की पितृभक्ति व सेवा संसार में प्रसिद्ध है, वह अपने बूढ़े, अन्धे माता-पिता की खूब सेवा किया करता था, तीर्थ कराने के लिए स्थान-स्थान पर माता-पिता को कावड़ियों की तरह कन्धे पर बैठाकर ले-जाता था।

एक बार जंगल में माता-पिता को प्यास लगी। पानी लेने के लिए वह नदी पर गया। राजा दशरथ शिकारहेतु उसी जंगल में आये हुए

थे। पानी में आवाज़ सुनकर राजा दशरथ ने कोई जंगली हाथी समझकर तीक्ष्ण बाण छोड़ दिया। वह बाण श्रवणकुमार की छाती पर लगा। राजा दशरथ किसी मनुष्य की आवाज़ सुनकर वहाँ गये और अपने हाथ से तीक्ष्ण बाण उसकी छाती से निकालकर उसका परिचय पूछा—"तुम कौन हो ? तुम्हारा क्या नाम है ?"

"महाराज मैं श्रवणकुमार हूँ, अपने अन्धे माता-पिता के लिए जल लेने हेतु यहाँ आया था। उन्हें बहुत ज़ोर से प्यास लगी है। प्यास के कारण वे प्राण छोड़ देंगे। इस कारण आप शीघ्र मेरे माता-पिता को जल पिला दें। राजा दशरथ पात्र में जल लेकर श्रवणकुमार के माता-पिता के पास पहुँचे, सारा वृत्तान्त उन्हें सुनाया। वृद्ध माता-पिता ने श्रवणकुमार की मृत्यु का समाचार सुनकर पुत्र के वियोग में अपने प्राण त्याग दिये।

जब तक सूरज और चाँद आकाश में रहेंगे, तब तक श्रवणकुमार की माता-पिता के प्रति की गई अटूट सेवा-भक्ति भी सदैव अमर रहेगी। किसी ने कहा है—

मात-पिता को तीर्थ कराने श्रवण चला कुमार।
मारग में राजा दशरथ का श्रवण हुआ शिकार।
मरते दम तक था कण्ठ में मात-पिता का प्यार।
सभी चाहते जुग-जुग जिए ऐसा श्रवणकुमार॥

छत्रपति शिवाजी की मातृ-भक्ति

छत्रपति शिवाजी महाराष्ट्र के महापुरुष थे। उनकी माता का नाम जीजाबाई था। शिवाजी की माता एक बार बहुत बीमार हो गई और स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता ही चला गया। शिवाजी को बहुत चिन्ता हुई। वे वैद्य के पास गये। माताजी के स्वास्थ्य का सारा वृत्तान्त सुनाया। श्री वैद्यराज ने शिवाजी को सलाह दी कि अपनी माँ के लिए शेरनी का दूध लाओ, तभी तुम्हारी माँ की जान बच सकती है।

शिवाजी वैद्य की बात मानकर रात में घोर जंगल में निकल पड़े। सर्दी का समय था। प्रातःकाल एक शेरनी जंगल में वृक्ष की ओट में

शीत से काँप रही थी। शिवाजी ने निडर होकर उस शेरनी के पास पहुँचकर अपने पात्र में दूध निकाला और वैद्यजी को सौंप दिया। वैद्य ने शेरनी के दूध में ओषधि मिलाकर पिलायी। उनकी माताजी स्वस्थ हो गई। धन्य है वीर शिवाजी, अपनी जान की परवाह न करके माता के प्रति अटूट भक्ति का परिचय दिया।

क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल का माता के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन

मेरी माँ

ग्यारह वर्ष की उम्र में माताजी विवाहकर शाहजहाँपुर आई थीं। उस समय यह नितान्त अशिक्षित एक ग्रामीण कन्या के सदृश थीं। शाहजहाँपुर आने के थोड़े दिनों बाद दादीजी ने अपनी बहन को बुला लिया। उन्होंने माताजी को गृह-कार्य की शिक्षा दी। थोड़े दिनों में माताजी ने घर के सब काम-काज को समझ लिया और भोजनादि का ठीक-ठीक प्रबन्ध करने लगीं। मेरे जन्म होने के पाँच या सात वर्ष बाद उन्होंने हिन्दी पढ़ना आरम्भ किया। पढ़ने का शौक उन्हें खुद ही पैदा हुआ था। मुहल्ले की सखी-सहेली जो घर पर आया करती थीं, उन्हीं में जो कोई शिक्षिता होतीं, माताजी उनसे अक्षर-बोध करतीं। इस प्रकार घर का सब काम कर चुकने के बाद जो कुछ समय मिल जाता उसमें पढ़ना-लिखना करतीं। परिश्रम के फल से थोड़े दिनों में ही वे देवनागरी पुस्तक का अवलोकन करने लगीं। मेरी बहनों को छोटी आयु में माताजी ही शिक्षा दिया करती थीं। जब से मैंने आर्यसमाज में प्रवेश किया, तब से माताजी से खूब वार्तालाप होता। उस समय की अपेक्षा अब उनके विचार भी कुछ उदार हो गये हैं। यदि मुझे ऐसी माता न मिलती तो मैं भी अति साधारण मनुष्यों की भाँति संसार-चक्र में फँसकर जीवन-निर्वाह करता। शिक्षादि के अतिरिक्त क्रान्तिकारी जीवन में भी उन्होंने मेरी वैसी ही सहायता की है जैसे मेज़िनी की उनकी माता ने की थी। यथासमय मैं उन सारी बातों का उल्लेख करूँगा। माताजी का सबसे बड़ा आदेश मेरे लिए यही था

कि किसी की प्राणहानि न हो । उनके इस आदेश की पूर्ति के लिए मुझे मजबूरन दो-एक बार अपनी प्रतिज्ञा भी भंग करनी पड़ी थी ।

जन्मदात्री जननी ! इस जीवन में तो तुम्हारा ऋण-परिशोध करने का अवसर न मिला । इस जन्म में तो क्या यदि अनेक जन्मों में भी सारे जीवन प्रयत्न करूँ तो भी मैं तुमसे अनृण नहीं हो सकता । जिस प्रेम तथा दृढ़ता के साथ तुमने इस तुच्छ जीवन का सुधार किया है, वह अवर्णनीय है । मुझे जीवन की प्रत्येक घटना का स्मरण है कि तुमने किस प्रकार अपनी देव-वाणी का उपदेश करके मेरा सुधार किया है । तुम्हारी दया से ही मैं देश-सेवा में संलग्न हो सका । धार्मिक जीवन में भी तुम्हारे ही प्रोत्साहन ने सहायता दी । जो कुछ शिक्षा मैंने ग्रहण की उसका श्रेय तुम्हीं को है । जिस मनोहर रूप से तुम मुझे उपदेश करती थीं, उसका स्मरण कर तुम्हारी मङ्गलमयी मूर्ति का ध्यान आ जाता है और मस्तक नत हो जाता है । तुम्हें यदि मुझे ताड़ना भी देनी हुई तो बड़े स्नेह से हर एक बात को समझा दिया । यदि मैंने धृष्टतापूर्ण उत्तर दिया तब तुमने प्रेमभरे शब्दों में यही कहा कि तुम्हें जो अच्छा लगे, वह करो, किन्तु ऐसा करना ठीक नहीं । इसका परिणाम अच्छा न होगा । जीवनदात्री ! तुमने इस शरीर को जन्म देकर केवल पालन-पोषण ही नहीं किया, किन्तु आत्मिक, धार्मिक तथा सामाजिक उन्नति में तुम्हीं सदैव सहायक रहीं । जन्म-जन्मान्तर परमात्मा ऐसी ही माता दें । महान्-से-महान् संकट में भी तुमने मुझे अधीर न होने दिया । सदैव अपनी प्रेमभरी वाणी को सुनाते हुए मुझे सान्त्वना देती रहीं । तुम्हारी दया की छाया में मैंने अपने जीवनभर में कोई कष्ट अनुभव नहीं किया ? इस संसार में मेरी किसी भी भोग-विलास तथा ऐश्वर्य की इच्छा नहीं । केवल एक तृष्णा है, वह यह कि एक बार श्रद्धापूर्वक तुम्हारे चरणों की सेवा करके अपने जीवन को सफल बना लेता, किन्तु यह इच्छा पूर्ण होती नहीं दिखाई देती और तुम्हें मेरी मृत्यु का दुःखद संवाद सुनाया जाएगा । माँ ! मुझे विश्वास है कि तुम यह समझकर धैर्य धारण करोगी कि तुम्हारा पुत्र माताओं की माता 'भारतमाता' की सेवा में अपने जीवन को बलिवेदी की भेंट कर गया और उसने तुम्हारी कुक्षि को कलंकित न किया । अपनी प्रतिज्ञा

पर दृढ़ रहा। जब स्वाधीन भारत का इतिहास लिखा जाएगा तो उसके किसी पृष्ठ पर उज्ज्वल अक्षरों में तुम्हारा भी नाम लिखा जाएगा। गुरु गोविन्दसिंहजी की धर्मपत्नी ने जब अपने पुत्रों की मृत्यु का संवाद सुना था, तो बहुत हर्षित हुई थी और गुरु के नाम पर धर्म-रक्षार्थ अपने पुत्रों के बलिदान पर मिठाई बाँटी। जन्मदात्री ! वर दो कि अन्तिम समय भी मेरा हृदय किसी प्रकार विचलित न हो और तुम्हारे चरणकमलों को प्रणाम कर मैं परमात्मा का स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करूँ।

—अमरशहीद रामप्रसाद 'बिस्मिल' की आत्मकथा से उद्धृत।

उपसंहार

यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि ।

यह तैत्तिरीयोपनिषद् की सूक्ति है—

इसका यह अभिप्राय है कि माता-पिता-आचार्य अपनी सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो-जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन-उनका ग्रहण करो और जो-जो दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो । जो-जो सत्य जानें उन-उनका प्रकाश और प्रचार करें, किसी पाखण्डी—दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करें और जिस-जिस उत्तम कर्म के लिए माता-पिता और आचार्य आज्ञा दें उस-उसका यथेष्ट पालन करें । माता-पिता ने धर्म, विद्या में जो अच्छे आचरणों के श्लोक, निघण्टु, निरुक्त, अष्टाध्यायी अथवा अन्य सूत्र या वेदमन्त्र कण्ठस्थ कराये हों उन-उनका पुनः अर्थ विद्यार्थियों को विदित करावें । जैसे प्रथम समुल्लास में परमेश्वर का व्याख्यान किया है उसी प्रकार मानके उसकी उपासना करें । जिस प्रकार आरोग्य विद्या और बल प्राप्त हो, उसी प्रकार भोजन-छादन और व्यवहार करें-करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें । मद्य-मांसादि के सेवन से अलग रहें । अज्ञात, गम्भीर जल में प्रवेश न करें, क्योंकि जल-जन्तु या किसी अन्य पदार्थ से दुःख और जो तैरना न जाने तो डूब ही सकता है ।

'नाविज्ञाते जलाशये' यह मनु का वचन है । अविज्ञात जलाशय में प्रविष्ट होके स्नानादि न करें ।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा ।।

यह किसी कवि का वचन है । वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं, जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई । वे विद्वानों की सभा में वैसे ही तिरष्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसों के बीच में बगुला । यही माता-पिता का कर्तव्य-कर्म परमधर्म और कीर्ति का

काम है कि अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना।

—'सत्यार्थ प्रकाश' से

विशेष—मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र, योगिराज श्रीकृष्णचन्द्र, धर्मराज युधिष्ठिर, श्रवणकुमार, महाराणा प्रताप, शिवाजी, आद्य श्रीशङ्कराचार्य, महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, महर्षि दयानन्द, महात्मा गाँधी, अमर शहीद भगतसिंह, पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' इत्यादि क्रान्तिकारियों की जन्मदात्री, निर्माणकर्त्री, सुशिक्षिता माताएँ हैं।

परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आज आर्यावर्त की धरती पर जन्म लेकर माताएँ अपने-आप को पाश्चात्य सभ्यता में ढाल रही हैं, अन्धानुकरण कर रही हैं, कुत्ते-बिल्लियों से अधिक प्यार, स्वयं के बच्चों पर अधिक ध्यान न देना, नौकरों के हाथ में खेलने देना इत्यादि दुर्गुण माताओं में पनप रहे हैं।

जिस देश में स्त्री-जाति का पतन होगा वह राष्ट्र भी पतन की ओर जाएगा, जिस देश में स्त्री-जाति उच्च तथा महान् बनेगी उस देश का उत्थान होगा, अतः माताओ ! अपने गौरव और संस्कृति को पहचानकर यथार्थ में गौरवान्वित होओ।

विविध सूक्तियाँ

(१) **माता निर्माता भवति ।**
निर्माण करने से माता होती है ।

(२) **नास्ति मातृसमो गुरुः ।**
माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है ।

(३) **जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।**
जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बड़ी हैं ।

(४) **माता गुरुतरा भूमेः ।**
माता पृथिवी से भारी है ।

(५) **मातृवत्परदारेषु ।**
पर-स्त्री को मातृवत् जानना चाहिए ।

(६) **सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते ॥**
हज़ार पिताओं की अपेक्षा माता गौरव में अधिक है ।

(७) **माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः ।**
भूमि मेरी माता है, मैं उसका पुत्र हूँ ।

(८) **मात्रा भवतु संमनाः ।**
पुत्र माता के मन को सन्तुष्ट करनेवाला हो ।

(९) **गुरूणां माता गरीयसी ।**
गुरुजनों में माता का स्थान ऊँचा होता है ।

माता का सच्चा स्वरूप

तू ही लक्ष्मी तू सरस्वती तू दुर्गा भवानी ।
मैंने जानी तेरी अमर कहानी—मैंने जानी ॥
तू ही राष्ट्र-भवन निर्माता तू ही वीर प्रसूता माता ।
बल विद्या वैभव तीनों में है तू ही लासानी ॥
तेरा विख्यात है कारनामा, युद्ध में मच गया हंगामा ।
निकल पड़ी रण में जब दुश्मन हो गये पानी-पानी ॥
तू ही बच्चों को वीर बनाती कुश्ती शेरों से करवाती ।
दे-देकर लोरियाँ बनाती देश भक्त बलिदानी ॥
तुझमें माता का प्यार अनूठा जिसके आगे सकल प्यार झूठा ।
वेद और सब शास्त्रों ने भी महिमा तेरी बखानी ॥
तुझमें पतिव्रत धर्म निराला, पापियों का किया मुख काला ।
किरणमयी अकबर के सीने पर कटार ले तानी ॥
तुझमें बहती प्रेमरस धारा जलता क्रोध का भी अंगारा ।
छिपी हुई तेरे आँसू में महाप्रलय तूफानी ॥
याद आती है पद्मावती की सीता सावित्री साध्वी सती की ।
निज सतीत्व के बल पति को जीवित करने की ठानी ॥
तूने जौहर की ज्वाला जलाई जिन्दा जलकर सती कहलाई ।
तेरा गुण वर्णन 'कवीन्द्र' कितना कर सके जबानी ॥
तुझसे पुरुषों ने है हार मानी आई बनकर है तू वरदानी ।
देश पै अपने शहीद हो गई तुझमें इन्दिरा रानी ॥

गीत माता के सिखाये

माता के सिखाये पुत्र पूर्ण विद्वान् होत हैं।
माता के सिखाये पुत्र कायर और क्रूर हैं॥
माता के पुत्र ब्रह्मचारी बलवान होत।
माता के सिखाये सुत सपूत और शूर हैं॥
माता के सिखाये फँसे अष्टादश व्यसन में।
माता के सिखाये सारे अवगुणों से दूर हैं॥
कहे "तेजसिंह" इसमें माता ही है मुख्य कारण।
इसलिए पुत्र पुत्रियों को पढ़ाना जरुर है॥

माता निर्मात्री

हमारे देश में जी, कैसी-कैसी हो गई माता
सुमित्रा और कौशल्या जैसी कहाँ है माता आज,
जिनकी गोदी लक्ष्मण खेले रामचन्द्र महाराज। हमारे।
लक्ष्मण मूर्छा सुन कौशल्या, हुई दुखी नाराज,
सुन सुमित्रा खुशी से बोली, हुई सपूती आज। हमारे।
माता गङ्गा जिन भीष्म जाया, बना बाल ब्रह्मचारी,
माद्री कुन्ती के पाँचों सुत, थे कैसे बलधारी। हमारे।
कृष्ण हुए सुप्रसिद्ध, कीर्ति है जिनकी जग छाई,
देवकी और यशोदा माता, से थी शिक्षा पाई। हमारे।
पन्ना माता धन्य हुई, जो उदय सिंह की धाया,
अपना पुत्र कटाया जिसने, राजकुमार बचाया। हमारे।
धर्म की नैया डूब चली थी, देश को आन बचाया,
दूसरी माता हुई कौशल्या, दयानन्द जिन जाया। हमारे।
ऋषि-मुनि किये योद्धा उत्पन्न, हरिश्चन्द्र-से दानी,
धर्मवती हुई लाखों माता, कहाँ तक कहूँ कहानी। हमारे।
हमारे देश में जी, कैसी-कैसी हो गई माता॥

प्रशस्ता धार्मिकी माता

जो करे पुत्र निर्माण माता सोई, जो करे पुत्र ..... ।।
विद्या पढ़ शुभ वृत्ति बनावे, माता से गुण-गण अपनावे ।
जो करे दूर अज्ञान माता सोई । जो करे पुत्र ..... ।।
संस्कार कर पुत्र बनावे, बलवर्द्धक नित भोजन खावे ।
हो वैदिक गर्भाधान माता सोई । जो करे पुत्र ..... ।।
बालक को शुभ शिक्षा देवे, खान-पान की सुध-बुध लेवे ।
दे गाली न मार माता सोई । जो करे पुत्र ..... ।।
वैर द्रोह का भूत नसावे, देश धर्म पर बलि-बलि जावे ।
करे देश कल्याण माता सोई । जो करे पुत्र ..... ।।
पुत्र बने मेरा सत्कर्मी, ध्रुव प्रह्लाद हकीकत धर्मी ।
दे ऐसा वरदान माता सोई । जो करे पुत्र ..... ।।
राम भरत और लक्ष्मण मानी, भीम युधिष्ठिर अर्जुन ज्ञानी ।
वीर जने सन्तान माता सोई । जो करे पुत्र ..... ।।
बने कौशल्या देवकी माता, राम कृष्ण की जो निर्माता ।
करे देश उत्थान माता सोई । जो करे पुत्र ..... ।।
हौआ कह बच्चे न डरावे, कभी किसी को भय न दिखावे ।
दे हाथ धनुष और बाण माता सोई । जो करे पुत्र ..... ।।
आर्य जनों की अन्तिम विनती, बनो बहन सारी गुणवन्ती ।
करे जगत् कल्याण माता सोई । जो करे पुत्र ..... ।।

(बच्चों को लोरी देकर सुलाना)

लोरी देती तेरी मात लाल बन आर्यवीर दिखलाना ।
पढ़ना गुरुकुल में तुम वेद, जानो धर्म कर्म के भेद ।
तेरे दूर होंई सब खेद बनकर वीर स्नातक आना ।।१।।
बनो मेरे बेटा तुम विद्वान्, गौतम कपिल कणाद समान ।
नष्ट करके सारा अज्ञान, बेटा बनकर ऋषि दिखलाना ।।२।।
अर्जुन भीष्म से बलवीर, मारो तान-तान कर तीर ।
तेरा विंध जाइ सकल शरीर, तो फिर शैया बाण बिछाना ।।३।।
नीति वीरों की कभी न छोड़ो, लाखों चक्रव्यूह तुम तोड़ो ।
करोड़ो अरियों के मुख मोड़ो । बेटा अभिमन्यु बन जाना ।।४।।
बेटा तू जब रण में जाय, दुश्मन दल लखकर थर्राये ।
तेरा पग बढ़ता ही जाय, बेटा पग पीछे नहीं हटाना ।।५।।
होकर तुम व्यापार प्रवीण, कभी मत होना लोभाधीन ।
बनकर भामाशाह नवीन, गौरव माँ सदा बढ़ाना ।।६।।
प्रजा तुम देश की गर कहलाओ, उसकी खातिर प्राण गमाओ ।
उसके भक्त अनन्य बन जाओ, मत तुम माँ का दूध लजाना ।।७।।
शिक्षा देती तेरी माता, बेटा बनो धर्म के ज्ञाता ।
तुमसे खुशी रहें तेरे ताता, बेटा आर्यवीर बन जाना ।।८।।

स्व० श्रीमती नवलिया देवी
माता श्री प्रह्लादकुमारजी आर्य